दैनिक जागरण
प्रार्थना हृदय की पुकार है

राज्यों का रवैया

यह बात सामने आने पर हैरानी नहीं कि प्रदूषण की रोकथाम के मामले में राज्यों का रवैया बेहद लापरवाही भरा है। यदि उत्तर भारत को वायु प्रदूषण से निजात नहीं मिल पा रही है तो इसी कारण कि संबंधित राज्य सरकारें प्रदूषण रोधी उपायों पर अमल करने के लिए तैयार नहीं। चूंकि राज्य सरकारों के साथ उनकी एजेंसियां भी अपनी जिम्मेदारी समझने को तैयार नहीं इसलिए स्थानीय निकाय भी कुछ करने के लिए सक्रिय नहीं होते। वैसे भी यह किसी से छिपा नहीं कि वे अपना तय काम मुश्किल से ही करते हैं। यदि वे भ्रष्टाचार और अव्यवस्था के अड्डों के तौर पर जाने जाते हैं तो अपने नाकारापन के कारण ही। वे घटिया राजनीति के गढ़ भी बन गए हैं और इसी कारण कई बार यह सामने आता है कि अगर स्थानीय निकाय पर राज्य में सत्तारूढ़ दल से इतर दल का वर्चस्व हो तो शासन की अपेक्षाओं की भी अनदेखी होती है। इस सबका ही यह नतीजा है कि छोटे-बड़े शहरों में वे सारी गतिविधियां बिना रोक-टोक जारी रहती हैं जो हर तरह के प्रदूषण को जन्म देती हैं।

वास्तव में सभी को यह समझने की जरूरत है कि प्रदूषण और खासकर वायु प्रदूषण पर तब तक प्रभावी लगाम नहीं लग सकती जब तक स्थानीय निकाय प्रदूषण फैलाने वाले कारणों का निवारण करने के मामले में सजगता का परिचय नहीं देते। वे सजग हों, इसके लिए राज्य सरकारों को अपना रवैया बदलना होगा। यह अपेक्षा इसलिए, क्योंकि बीते दो-तीन वर्षों से यह देखने में आ रहा है कि केंद्र सरकार अक्टूबर-नवंबर में राज्यों को इसके लिए आगाह करती है कि पराली जलने न पाए, लेकिन होता वही है जो दशकों से होता चला आ रहा है। दिल्ली के पड़ोसी राज्यों को पराली दहन को लेकर आगाह करने का काम राष्ट्रीय हरित अधिकरण की ओर से भी किया जाता है, लेकिन वह भी काम नहीं आता। आखिर यह लापरवाही की पराकाष्ठा नहीं तो और क्या है कि इस बार भी पंजाब, हरियाणा समेत कुछ और राज्यों में पराली जली? इस साल हरियाणा में तो तब भी गनीमत रही, लेकिन पंजाब में पिछले साल के मुकाबले कहीं ज्यादा पराली दहन हुआ। इससे यही पता चलता है कि राज्य सरकारें वायु प्रदूषण से निपटने के मामले में राजनीतिक इच्छाशक्ति का परिचय नहीं दे रही हैं। उनकी अनिच्छा का नकारात्मक असर स्थानीय निकायों पर दिखता है। यदि यह समझा जा रहा है कि सब कुछ केंद्र सरकार कर सकती है तो यह सही नहीं। वायु प्रदूषण से छुटकारा तो तभी मिल सकता है जब सभी अपने हिस्से की जिम्मेदारी का निर्वहन करेंगे। निःसंदेह इसमें आम आदमी भी शामिल हैं।

पंचायतों की मजबूती

उत्तराखंड में शहरी निकायों और पंचायतों की व्यवस्था को दुरुस्त करने की जरूरत है। पिछले कुछ वर्षों में स्थानीय निकायों और पंचायतों को धन आवंटन की व्यवस्था में सुधार हुआ है, लेकिन इसके बाद भी उनकी हालत में अपेक्षित बदलाव नहीं हो पाया है। अलग राज्य बनने के बाद उत्तराखंड में शहरीकरण की दर काफी तेज है। अर्द्धशहरी क्षेत्रों में तेजी से इजाफा होने की वजह से सरकार को शहरी निकायों की संख्या बढ़ानी पड़ी है। इन क्षेत्रों में जन सुविधाओं को बढ़ाने का दबाव ज्यादा है, लेकिन निकाय इस बदलाव के लिए खुद को तैयार नहीं कर पा रहे हैं। कमोबेश यही हाल त्रिस्तरीय पंचायतों का है। इनका सांगठनिक ढांचा बेहद लचर है। एक ओर निकायों और पंचायतों के माध्यम से सरकार नीति नियोजन को निचले स्तर पर मजबूत करने का दावा तो करती है, लेकिन हकीकत जुदा है। हालांकि केंद्रीय वित्त आयोग और राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के चलते निकायों और पंचायतों को वित्तीय संकट से काफी हद तक निजात मिली है। केंद्र सरकार से दी जाने वाली धनराशि सीधे निकायों और पंचायतों को ट्रांसफर होने लगी है। इसमें देरी होने पर राज्य सरकार के साथ ही संबंधित महकमों की जवाबदेही बढ़ गई है। बावजूद इसके विकास कार्यों के लिए मिलने वाली धनराशि का समयबद्ध सदुपयोग करने में तमाम निकाय और पंचायतें अक्षम साबित हो रहे हैं। राज्य सरकार ने शहरी और ग्रामीण जनता से सीधे जुड़ी इन छोटी सरकारों को मजबूत करने की इच्छाशक्ति नहीं दिखाई है। सड़कों, पेयजलापूर्ति, विद्युत आपूर्ति, आवास निर्माण, स्वच्छकों की नियुक्ति, ढांचे को दुरुस्त करने समेत जनसंख्या नियोजन को लेकर निकायों और पंचायतें सरकार का मुंह तकने को विवश हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि मौजूदा व्यवस्था में बदलाव होने पर दोनों संस्थाएं अपनी अहम और चुनौतीपूर्ण भूमिकाओं को सशक्त तरीके से अंजाम देंगीं। पांचवें राज्य वित्त आयोग ने निकायों और पंचायतों के ढांचे के सरलीकरण और उसे दुरुस्त करने के साथ ही मौजूदा वित्तीय व्यवस्था में सुधार के संबंध में आम नागरिकों से सुझाव मांगे हैं। इन सुझावों के आधार पर आयोग निकायों और पंचायतों के संबंध में अपनी रिपोर्ट को अंतिम रूप देगा। हालांकि सुझावों और विचारों की भागीदारी की इस प्रक्रिया में अन्य स्टेकहोल्डर्स के साथ भी विस्तार से चर्चा की जानी है। आयोग की रिपोर्ट निकायों और पंचायतों को दिशा देने में अहम भूमिका निभाएगी, ऐसी स्वाभाविक अपेक्षाएं हैं।

वास्तव में राज्य सरकार ने स्थानीय निकायों और पंचायतों को मजबूत करने की इच्छाशक्ति नहीं दिखाई है

महिलाओं के लिए कब सुधरेंगे हालात

अद्वैता काला

हैदराबाद की पीड़िता न केवल उन दरिंदों की शिकार हुई जिन्होंने उसकी देह की धज्जियां उड़ाईं, बल्कि वह उस तंत्र से भी प्रताड़ित हुई जिसने उसके जीवन की परवाह नहीं की

हैदराबाद की एक हृदयविदारक घटना से मन बेहद व्यथित है। वहां एक महिला चिकित्सक के साथ दुष्कर्म के बाद उसकी हत्या से पूरा देश आक्रोशित है। उस 26 वर्षीय युवती ने अभी अपनी जिंदगी ढंग से शुरू ही की थी। आम हिंदुस्तानी मध्यमवर्गीय परिवार की उस लड़की से मेरा कोई निजी परिचय नहीं था, लेकिन उसने पशु चिकित्सक का जो पेशा चुना उससे यही आभास होता है कि वह करुणा भाव से भरी थी। ऐसा इसलिए, क्योंकि इस काम में बेजुबानों के दुखदर्द को समझकर उनका इलाज करना पड़ता है और यह कोई खास किस्म का शख्स ही कर सकता है।

बीते गुरुवार और शुक्रवार की दरमियानी रात उसके साथ जो हैवानियत हुई, वह मानवता को शर्मसार करने वाली है। उससे भी ज्यादा हमारा रवैया निराश करने वाला रहा कि इतना सब कुछ होने के बावजूद हम खामोश रहे। समूचा तंत्र, पूरा समाज और जिन्हें उसकी हिफाजत करनी चाहिए थी, वे मौन रहे। जिस दिन उसका जला हुआ शव मिला, तब क्या हुआ? जनता की प्रतिनिधि लोकसभा ने एक पल के लिए उस पर चर्चा करना भी उचित नहीं समझा। न उसके साथ हुई बर्बरता की भर्त्सना में एक शब्द फूटा और न ही उसके शोकसंतप्त परिवार को कोई दिलासा दिया गया। जब ऐसी बर्बरता के बावजूद लोकसभा में महिला सुरक्षा के मुद्दे पर कोई चर्चा तक न की जाए, तब आखिर महिलाओं को क्या करना चाहिए कि उनके मुद्दों पर सुनवाई हो?

महिलाओं की सुरक्षा को लेकर सवाल उठाना तो दूर हमारे नेता उल्टे पीड़ितों पर सवाल दागने लगते हैं। जब भी महिलाओं के खिलाफ ऐसा कोई अपराध होता है तो किसी न किसी नेता की जुबान जरूर फिसलती है। इस बार भी ऐसा ही हुआ जब तेलंगाना के गृहमंत्री ने कहा कि उनके जैसी पढ़ी-लिखी महिला डॉक्टर ने भी पुलिस को फोन करने के बजाय अपनी बहन को क्यों फोन किया। यह एक तरह से अपने पाले में किया गया गोल था। मानों इतना ही काफी नहीं था। बेटी की गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए भी परिवार को तमाम परेशानियां झेलनी पड़ीं। यह दर्शाता है कि महिलाओं के खिलाफ अपराधों की शिकायत को लेकर प्रशासन कितना नाकारा और निर्दयी होने के साथ-साथ असंवेदनशील भी है। पीड़िता का परिवार रात ग्यारह बजे पुलिस स्टेशन पहुंचा, लेकिन उनकी गुमशुदा बेटी की तलाश के लिए निकलने में पुलिस को सुबह तीन बज गए। इस दौरान आपराधिक कृत्य का ब्योरा सामने आता गया। उससे पता चला कि चार लोगों ने उसके साथ बारी-बारी से दुष्कर्म किया। उसे इतना प्रताड़ित किया कि वह मौत के मुंह में चली गई। फिर उन दरिंदों ने उसकी देह को कंबल में लपेटकर आग के हवाले कर दिया। यह सब उस जगह हुआ जहां से वह टोल प्लाजा बमुश्किल कुछ ही दूरी पर है जहां उसे आखिरी बार देखा गया था। अगर

फाइल फोटो

पुलिस वक्त रहते कार्रवाई करती तो संभव था कि कम से कम उसकी जान बचाई जा सकती थी। इसके उलट तत्परता से कार्रवाई के बजाय पुलिस इसी टालमटोल में वक्त जाया करती रही कि यह अपराध किस थाना क्षेत्र के अंतर्गत हुआ है। क्या इससे भी ज्यादा कुछ भयावह हो सकता है? पूरी तरह टूट चुके उसके पिता ने कई साक्षात्कारों में अपनी आपबीती सुनाई है।

वह युवा डॉक्टर न केवल उन दरिंदों की शिकार हुई जिन्होंने उसकी देह की धज्जियां उड़ाईं, बल्कि वह उस तंत्र से भी प्रताड़ित हुई जिसने उसके जीवन की परवाह नहीं की। पुलिस ने पीड़िता की खोज-खबर के लिए शीघ्रता दिखाने के बजाय उसके परिवार को कायदे-कानूनों की घुट्टी पिलाई। इससे यही सवाल उठता है कि क्या महिलाओं की जिंदगी मायने नहीं रखती?

जाहिर है कि इस मामले में नेताओं ने हमें एक बार फिर निराश किया। मीडिया ने ही इस मामले को उठाया। उन्होंने निर्भया की मां से संपर्क साधा। वह एक और मामले की सुनवाई के लिए पटियाला हाउस अदालत के बाहर मिलीं। अपनी बेटी के साथ हुए वीभत्स सामूहिक दुष्कर्म और हत्या के बाद से उनकी जिंदगी अदालतों के चक्कर काटने में ही गुजर रही है। पहले तो बेटी के साथ हुई बर्बरता के मामले में इंसाफ को लेकर और अब उस न्याय को हासिल करने के लिए जिसका वादा किया गया था। वह अपनी बेटी के क्रूर अपराधियों के लिए मौत की सजा से कम कुछ भी नहीं चाहतीं। फिर भी हमारा न्यायिक तंत्र उन्हें निराश कर रहा है। देश में दुष्कर्म के सबसे अधिक चर्चित मामले में अगर यह स्थिति है तो फिर अन्य मामले में क्या उम्मीद की जा सकती है?

वर्ष 2016 के एक आंकड़े के अनुसार भारत में दुष्कर्म के रोजाना 106 मामले सामने आते हैं। इससे पूरी तस्वीर स्पष्ट नहीं होती, क्योंकि यहां दुष्कर्म के सभी मामलों की रपट नहीं दर्ज कराई जाती। कुछ सामाजिक पहलुओं और इंसाफ पाने के लिए जटिल न्यायिक प्रक्रिया के कारण इससे जुड़े सभी अपराध दर्ज नहीं हो पाते। तिस पर प्रत्येक चार में से एक मामले में ही अपराध सिद्ध हो पाता है। यह बहुत निराशाजनक दर है। डीएनए विश्लेषण जैसी तकनीक से दोषसिद्धि दर बढ़ाई जा सकती है। इसमें 2018 की एक रिपोर्ट बताती है कि दुष्कर्म से जुड़े 12,000 मामले सिर्फ इसलिए लंबित हैं, क्योंकि नमूनों की जांच के लिए पर्याप्त प्रयोगशालाएं नहीं हैं। क्या यह शर्मनाक नहीं है? एक तो अपराध सिद्ध होने की दर इतनी कमजोर है और जिन साक्ष्यों से इन अपराधियों पर शिकंजा कसा जा सकता है, उन्हें जुटाने में इतनी देरी हो रही है। अगर यह महिलाओं को इंसाफ दिलाने में हीलाहवाली की मिसाल नहीं है तो और क्या है?

यह बहुत निराश-हताश करने वाली स्थिति है। इसमें नेताओं से सिर्फ नाकामी मिली है। उन्हें महिलाओं की याद केवल चुनावों के दौरान आती है। वे यही उम्मीद करते हैं कि हम कुछ प्रतीकों के उन्माद में ही संतुष्ट रहें। जैसे-मौजूदा संसद में महिलाओं की सबसे ज्यादा भागीदारी कि कुल सांसदों में महिलाओं की संख्या 14.36 प्रतिशत हो गई है। यहां इस तथ्य को भी याद रखें कि पिछली जनगणना के अनुसार देश की आबादी में 48 प्रतिशत महिलाएं हैं। क्या उस हिसाब से यह बराबरी की हिस्सेदारी है? वहीं हमारी संसद महिलाओं के हितों से जुड़े कानून तो बनाती है, लेकिन हैदराबाद जैसे वीभत्स मामलों पर चर्चा के लिए समय नहीं निकाल पाती। यह रवैया महिलाओं को आक्रोशित और नाउम्मीद ही करता है।

हैदराबाद की उस पीड़िता की जिंदगी के आखिरी घंटों की कल्पना कर आप सिहर उठेंगे। रात का घुप अंधेरा। सुनसान सड़क। फोन पर बहन से आखिरी बातचीत में सिर्फ खौफ की अनुभूति। एक बेहद व्यस्त टोल प्लाजा से चंद किलोमीटर की दूरी पर दुष्कर्म। इसके बाद वे वहशी उसका वजूद ही मिटा देते हैं। अगर इससे भी आप व्यथित होकर यह नहीं सोचते कि हम महिलाओं को क्यों लगातार निराश कर रहे हैं तो फिर यही समझना होगा कि यह देश आधी आबादी के लिए है ही नहीं।

(स्तंभकार जानी-मानी पटकथा लेखिका हैं)

response@jagran.com

हिंदुत्व का अहित करते फर्जी पैरोकार

अवधेश कुमार

आजकल हिंदुत्व के नाम पर तमाम फर्जी संगठन खड़े हो गए हैं जिनके विकृत विचारों से हिंदुत्व को नुकसान पहुंच रहा है

भोपाल से भाजपा सांसद प्रज्ञा ठाकुर एक बार फिर विवादों में हैं। उन पर संसद में नाथूराम गोडसे को देशभक्त बताने का आरोप है। निःसंदेह देश का एक सांसद यदि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के हत्यारे को देशभक्त कहता है तो इससे शर्मनाक और निंदनीय कुछ नहीं हो सकता। इसके लिए भाजपा ने कार्रवाई करते हुए साध्वी प्रज्ञा के भाजपा संसदीय दल की बैठक में भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया है। साथ ही रक्षा मामलों की संसदीय समिति से उन्हें हटाने की घोषणा कर दी है। इसके अलावा उन्हें लोकसभा में दो बार क्षमा याचना भी करनी पड़ी है। हालांकि साध्वी का कहना है कि उनके बयान को तोड़-मरोड़कर पेश किया गया है। दरअसल द्रमुक सांसद ए राजा द्वारा शहीद उधम सिंह का नाम लेने पर उन्होंने कहा था कि किसी देशभक्त को मत घसीटिए। हम उनके स्पष्टीकरण पर नहीं जाना चाहते। चुनाव प्रचार के दौरान भी उन्होंने गोडसे को देशभक्त बताया था। उस बयान ने देश भर में खलबली मचा दी थी। स्वयं प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने उसकी आलोचना करते हुए कहा था कि 'सभ्य समाज में इस तरह की भाषा नहीं चलती। दूसरा कोई उन्हें माफ कर दे, मैं उन्हें दिल से माफ नहीं कर पाऊंगा।' अगर साध्वी ने वाकई संसद में गोडसे के बारे में दोबारा यही बात कही तो फिर यह बिल्कुल अक्षम्य है। पार्टी ने इसकी छानबीन करके ही उनके विरुद्ध फैसला किया होगा, लेकिन यहां सवाल केवल साध्वी प्रज्ञा ठाकुर का नहीं है।

देश में एक वर्ग है जो गांधी जी के बारे में अपमानजनक भाषा का इस्तेमाल करता है। वह उनके बारे में निहायत ही झूठी बातें फैलाने का काम रहा है। यह सच है कि गांधी जी के जीवनकाल में ही जम्मू-कश्मीर में सेना भेजने तथा पाकिस्तानी सेना से लड़ने का फैसला हुआ था, जिसे उन्होंने रोका नहीं था। इसका मतलब हुआ कि उस पर उनकी सहमति थी। हैदराबाद में भी उनके समय में ही सेना भेजी गई थी। वास्तव में गांधी जी अखंड भारत की भावना से अंतिम समय तक काम करते रहे। उन्होंने विभाजन को रोकने के लिए भी जितना संभव था किया, लेकिन कुछ लोगों ने उनके खिलाफ कई नकारात्मक बातों को फैला दिया है। इस दौरान भाजपा पर हमला करने वाली कांग्रेस यह भूल रही है कि जिस शिवसेना के साथ वह महाराष्ट्र सरकार में भागीदार हो गई है उसका विचार हमेशा से गोडसे के पक्ष में रहा है। शिवसेना के संस्थापक बाला साहब ठाकरे तो डंके की चोट पर नाथूराम गोडसे को देशभक्त बताते थे। बाल ठाकरे के बेटे और हाल

ही में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री बने उद्धव ठाकरे भी सामना के संपादक रहे हैं। गोडसे के महिमामंडन में उनकी कई टिप्पणियां सार्वजनिक रूप से मौजूद हैं। अगर कांग्रेस को गांधी जी के सम्मान की वाकई चिंता है और गोडसे की प्रशंसा करने वालों से उनका विरोध है तो फिर शिवसेना के साथ गठबंधन बनाने का मतलब क्या है?

इस समय विपक्षी पार्टियां यह भी कह रही हैं कि प्रज्ञा ठाकुर ने जो कहा वही संघ और भाजपा की आत्मा है, लेकिन यह हकीकत नहीं है। वास्तव में नरेंद्र मोदी ने गांधी जी के नाम का जितनी बार उल्लेख किया है उतना किसी दूसरे प्रधानमंत्री ने शायद ही किया हो। जिस संघ परिवार को राजनीतिक पार्टियां और कथित बुद्धिजीवी कटघरे में खड़ा कर रहे हैं, उन्हें पता होना चाहिए कि संघ के प्रशिक्षण शिविरों में प्रातः गांधी जी का नाम श्रद्धा से लिया जाता है। वहां गांधी जी के जीवन से जुड़े कई प्रसंग बताए जाते हैं। यह सच है कि नाथूराम गोडसे कभी संघ से जुड़ा था, किंतु उससे निराश होकर उसने जल्द ही संघ छोड़ दिया, क्योंकि हिंदू, मुसलमान, हिंदुत्व के बारे में उसकी जो अतिवादी सोच थी, वह संघ से मेल नहीं खाती थी। उसका देशप्रेम विकृत था। उसमें संतुलन का अभाव था। लिहाजा वह संघ की आलोचना करने लगा था। उसके अखबार पहले दैनिक अग्रणि तथा बाद में हिंदू राष्ट्र के अंकों में उसके विचारों के बारे में काफी कुछ पता चलता है। यह भी सच है कि वह लंबे समय तक गांधी जी और वीर सावरकर, दोनों का प्रशंसक रहा था, जिसका उसके भाई गोपाल गोडसे ने अपनी पुस्तक 'गांधी वध क्यों' में जिक्र किया है। बाद में उसने सावरकर की भी तीखी आलोचना शुरू कर दी थी। साथ ही गांधी जी को भी वह अधिनायकवादी मानने लगा था।

दरअसल गोडसे के पास भारत, हिंदू, हिंदुत्व को लेकर सही धारणा नहीं थी, जिसके कारण उसके इर्द-गिर्द विकृत सोच वाले लोग एकत्रित होते गए थे। वे भारत को उस समय की स्थिति से उबारने के लिए गलत रास्ते अपनाने लगे थे। वे मानने लगे थे कि गांधी जी की हत्या से ही हिंदू समाज की रक्षा होगी और भारत सही रास्ते पर आएगा। यह उनकी बड़ी घटिया सोच थी। दुख की बात है कि इसी तरह की निकृष्ट सोच का विस्तार देश में पिछले कुछ वर्षों में हुआ है। हिंदू, हिंदुत्व, भारतीय राष्ट्र-राज्य की इनकी कल्पनाएं अतिवाद से भरी हैं। ऐसे तत्वों को संयमित करना जरूरी है। ऐसे लोग किसी संगठन की विचार सीमा और अनुशासन में नहीं रह सकते। अजमेर शरीफ विस्फोट में जिन लोगों को सजा हुई है वे ऐसी ही सोच की उपज हैं। इनसे आज यह पूछने की जरूरत है कि अगर नाथूराम इतना ही वीर था तो उसने मोहम्मद अली जिन्ना को गोली क्यों नहीं मारी, जो कि भारत विभाजन के लिए सीधे जिम्मेवार थे? एक निहत्थे, निरपराध महात्मा, जिन्होंने अपना पूरा जीवन देश और मानवता को समर्पित कर दिया उसका हत्यारा कभी देशभक्त नहीं माना जा सकता।

साध्वी प्रज्ञा ठाकुर के बारे में कहना कठिन है कि इस घटनाक्रम के बाद उनकी सोच बदली है या नहीं? वस्तुतः इस तरह की मानसिकता वालों को शायद यह भी पता नहीं होगा कि हिंदू महासभा के किसी कार्यालय में गोडसे की तस्वीर नहीं है। जिस हिंदू महासभा से वह जुड़ा था, वही संगठन उसे महापुरुष या देशभक्त नहीं मानता। हिंदू महासभा के साहित्य में गोडसे की कोई पुस्तक भी नहीं मिलेगी। यहां मूल हिंदू महासभा की बात हो रही है। यह अलग बात है कि आजकल जगह-जगह हिंदू महासभा के नाम से संगठन खड़े हो गए हैं, जो गोडसेवादी हैं। वास्तव में थोड़ी गहराई से विचार करें तो देश में इन दिनों एक खतरनाक प्रवृत्ति का प्रसार हो रहा है, जो किसी के भी हित में नहीं। इससे हिंदुत्व का विचार ही बदनाम होता है। इस प्रवृत्ति को कैसे रोका जाए, आज इस पर चिंतन-मनन करने की आवश्यकता है?

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

खुशियों का पता

आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में शायद ही ऐसा कोई इंसान हो जिसे तनाव एवं उदासी से जूझना नहीं पड़ता। किसी के सिर पर काम का बोझ है तो कोई अपने निजी एवं पारिवारिक कारणों की वजह से दुखी है। किसी को परीक्षा में कम नंबर आने का मलाल है तो किसी को नौकरी नहीं मिलने का गम। इन हालातों में अब खुशी और हंसी इंसानी चेहरों से ओझल हो चुकी है।

प्रतिस्पर्धा की जंग में अव्वल आने की चाह में व्यक्ति ने अपना सुख-चैन सब कुछ दांव पर लगा दिया है। हमारे पास जो है उसकी हमें कद्र नहीं है। मृगतृष्णा के पीछे भागते मन को संतुष्टि नहीं है। संतुष्टि के अभाव में जीवन में बढ़ता कोलाहल हमें निरंतर नकारात्मक बनाने पर आमादा है। इसका मूल कारण यही है कि हमने अपने जीवन को समझा नहीं, बल्कि हम जीवन को दुखों का घर समझने वाली विचारधारा के पीछे चलते गए और कभी जीवन में खुशियों को आने का निमंत्रण ही नहीं दिया। हमें जो मिलता है और हमारे साथ जो होता है ये हमारे कर्म तय करते हैं। अतः इंसान के कर्मों में सादगी एवं सत्यता बनी रहनी चाहिए।

यकीन मानिए कि हम सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि हमारे पास तंदुरुस्त शरीर है। आंख, कान, नाक एवं हमारे हाथ-पैर सही सलामत हैं। एक बड़ी जनसंख्या इनसे वंचित जीवन जी रही है। वास्तव में खुशियां हमारे आस-पास ही हैं। बस उन्हें तलाशने वाली नजर की जरूरत है। समस्याएं तो सबके साथ हैं। बात बस नजरिये की है। जब तक हम अपना नजरिया नहीं बदलेंगे तब तक दुनिया हमारे लिए दुखों का घर बनकर हमारी परेशानी बढ़ाती ही रहेगी। इससे स्पष्ट होता है कि जिस दिन हमने सकारात्मक दृष्टिकोण से जिंदगी को देखना शुरू कर दिया उसी दिन से खुशियां हमारा पता ढूंढते हुए दौड़ी चली आएंगी। अतः अपनी हंसी और खुशी को आगे बढ़ने की व्यर्थ होड़ में खोने न दें। ऐसी दौलत का क्या फायदा जो हमारी नींद ही उड़ाकर रख दे। कहा भी गया है-कमाओ हीरा या मोती, कफन में जेब नहीं होती।

देवेंद्रराज सुथार

कब छंटेगा असुरक्षा का अंधेरा

फिर से

घर आने के बाद मां को फोन कर बताती हूं कि चिंता मत कीजिए मैं आज भी सुरक्षित वापस लौट आई हूं

आदरणीय प्रधानमंत्री जी,

एक और घटना घट गई। देश की एक और बेटी दरिंदों की हवस का शिकार हो गई। एक बार फिर आपके देश की बेटियां भीतर तक सहम गई हैं। लोग सड़कों पर उतर आए हैं। नारे लगने शुरू हो गए हैं। मोमबत्तियां जलाई जा रही हैं। चीजें घूम-फिर कर फिर से वहीं आ गई हैं जहां सात साल पहले निर्भया कांड के समय थीं। मेरे सामने कई आंखें हैं जिनमें हैदराबाद की घटना को लेकर रोष है। कुछ मन हैं जो कष्ट और वेदना से भरे हुए हैं। कुछ आंखों में मुझे वही डर नजर आ रहा है जो मेरे भीतर भी जगह बनाने लगा है।

प्रधानमंत्री जी, घर से सैकड़ों किलोमीटर दूर किसी दूसरे शहर में रोज स्कूल, कॉलेज या ऑफिस के लिए निकलना और रात को सुरक्षित वापस लौट आना कितना असामान्य हो गया है। मैं सुबह जिस बस से ऑफिस जाती हूं, उनके पीछे लिखा होता है-'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ', 'बेटियां बेटों से कम हैं क्या?'। ये नारे और स्लोगन आज मुझे मुंह चिढ़ा रहे हैं! सड़क पर चलते वक्त या रात को वापस घर लौटते समय मेरे दिल की धड़कनें बढ़ जाती हैं। कदम तेज हो जाते हैं और दिमाग एक ही बात सोच रहा होता है कि कहीं मेरे साथ भी...! हर रात घर आने के बाद मां को फोन कर बताती हूं कि आप चिंता मत कीजिए मैं आज भी सुरक्षित वापस लौट आई हूं। हम अपनी सफलता की उड़ान किस ओर ले जाएं प्रधानमंत्री जी? आखिर सरकार इन पापियों के खिलाफ कोई ठोस कदम क्यों नहीं उठाती? निर्भया कांड के गुनहगारों को फांसी की सजा सुनाई गई है, लेकिन देश की न्याय व्यवस्था की लाचारी देखिए अभी तक वे नरदानव सिर उठाए खड़े हैं। क्या उन्हें फांसी की सजा देना, हमारे साथ इतनी घिनौनी और विभत्स हिंसा को अंजाम देने से ज्यादा कठिन है?

हैदराबाद तो वह है जो नजरों में आ गया, लेकिन ऐसे सैकड़ों मामले हैं जिनमें आरोपी जमानत लेकर अपने अगले शिकार की तलाश में बाहर घूम रहे हैं। सरकार बनाने के लिए तो रविवार के दिन भी न्यायालय खोला जाता है, सुनवाई होती है और सरकार बनाई जाती है। आखिर बेटियों के लिए यह सामूहिक लाचारी क्यों? कई देशों में यौन उत्पीड़न के बाद आरोप सिद्ध होने पर आरोपियों को 'नपुंसक' बनाने का प्रावधान है। यह व्यवस्था हमारे देश में क्यों नहीं लागू की जा सकती है? इसमें क्या मजबूरी है? कोई सांसद इस विषय पर 'प्राइवेट मेंबर बिल' क्यों नहीं लाता? उन्हें बेटियों की चिंता है तो कदम क्यों नहीं उठाते? सरकार और संवैधानिक प्रतिष्ठानों की यह बेबसी देखकर तरस आता है कि हम ऐसे देश में रहते हैं जहां बेटियां हताश हैं, निराश हैं, बेचैन हैं, निःशब्द हैं, असहाय हैं, डरी हुई हैं, सहमी हुई हैं कि किस क्षण उनके साथ...! प्रधानमंत्री जी, हम जानवरों से तो अपनी सुरक्षा करने में सक्षम हैं, पर राक्षसों से नहीं। आपसे बहुत उम्मीदें हैं। यदि इस पर कोई ठोस कदम उठा सकते हैं तो देर मत कीजिए। और यदि नहीं तो हमें इन राक्षसों की हवस का शिकार होने से पहले वैसे ही जिंदा जला दीजिए, जैसे हैदराबाद में उन दरिंदों ने...।

एक बेटी।

(प्राची प्रियम के फेसबुक वॉल से साभार)

मेलबाक्स

जनादेश पर हावी अवसरवादी राजनीति

'भितरघात की शिकार तो नहीं भाजपा' शीर्षक से लिखे अपने लेख में संजय गुप्त ने महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव के संदर्भ में भाजपा में भितरघात की जो आशंका जताई है, वह इस राज्य में भाजपा के पूर्ण बहुमत प्राप्त न कर पाने की एकमात्र वजह नहीं है। 2019 के लोकसभा चुनाव में राष्ट्रीय फलक पर दोबारा अपना परचम फहराने वाली भाजपा सबसे बड़े दल के रूप में उभरने के बाद भी राज्यों में सरकार बना पाने में नाकाम हो रही है, यह विचारणीय अवश्य है। वस्तुतः जब से भारतीय राजनीति में जनादेश को नजरंदाज कर जोड़-तोड़ की अवसरवादी राजनीति का बोलबाला हुआ है, तब से बहुमत के जादुई आंकड़े से पीछे रहने वाले सबसे बड़े दल को सरकार बनाने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। महाराष्ट्र में सबसे बड़े दल के रूप में उभरने के बाद भी भाजपा द्वारा सरकार न बना पाने के पीछे यही अवसरवादी राजनीति है। महाराष्ट्र में जिस तरह से चुनाव पूर्व भाजपा-शिवसेना गठबंधन को बहुमत के साथ जनादेश मिला था, उसका सम्मान हर हाल में होना ही चाहिए था, लेकिन शिवसेना ने ऐसा नहीं होने दिया। अपनी विचारधारा को तिलांजलि देकर विरोधियों के साथ मिलने वाली शिवसेना महाराष्ट्र पर शासन करने के बाद भी यहां के जनमानस पर राज कर पाएगी, इसकी संभावना कम ही है, क्योंकि जिस अपेक्षा के साथ महाराष्ट्र की जनता ने भाजपा-शिवसेना गठबंधन को सरकार बनाने के लिए बहुमत दिया था, उसका निरादर करके लोकतंत्र को लज्जित किया गया है। भाजपा ने भी जिस उतावलेपन से राकांपा के अजीत पवार पर विश्वास करके देवेंद्र फड़नवीस के नेतृत्व में सरकार बनाने की कुचेष्टा की, उसे भी उचित नहीं माना जा सकता। भाजपा के इस अविवेकपूर्ण कृत्य ने शिवसेना को कांग्रेस और राकांपा जैसे धुर विरोधी दलों के साथ मिलकर सरकार बनाने का अवसर उपलब्ध करा दिया। निःसंदेह अवसरवाद की यह विकृत राजनीति जिस तरह से जनादेश पर हावी होकर लोकतंत्र की खिल्ली उड़ा रही है, वह विचारणीय है।

डॉ. वीपी पांडेय, अलीगढ़

यह कैसा मनोरंजन?

टीवी के एक चैनल पर प्रसारित हो रहे कार्यक्रम बिगबॉस के प्रतिभागी अच्छे परिवारों से हैं। ये सभी एक ही घर में रहते हैं जहां सब जगह कैमरे लगे हैं। ये खाने पर, घर के कामों पर या अन्य कारणों से दिन रात लड़ते ही रहते हैं। इनको नए-नए टास्क दिए जाते हैं जिनका कोई सिर पैर नहीं होता। अंग्रेजी, हिंदी या अन्य आम बोली का इस्तेमाल करने वाले ये प्रतिभागी कैसे हमारा मनोरंजन करते हैं समझ से परे है? एक साथ रहने वाले ये लोग एक दूसरे को नीचा दिखाने, गाली गलौच करने, षडयंत्र रचते हुए समाज को क्या शिक्षा दे रहे हैं? यह मूलतः एक विदेशी धारावाहिक बिग ब्रदर की नकल है जो वहां की सभ्यता से शायद मेल खाता हो, पर यहां ये केवल और केवल नुकसान ही पहुंचा रहा है। ऐसे कार्यक्रमों के प्रसारण की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए।

प्रवीण कुमार सक्सेना, आर्य विहार, नोएडा

अवैध कॉलोनियों पर जुबानी जंग

दिल्ली में अनधिकृत कॉलोनियों को लेकर दोनों सरकारों के बीच जुबानी जंग जारी है। मुख्यमंत्री केजरीवाल का कहना है कि केंद्र सरकार चुनाव को देखते हुए अनाधिकृत कॉलोनियों को पंजीकृत कर रही है और उन्होंने तंज कसते हुए कहा कि केवल 100 कॉलोनियों को नहीं, बल्कि सभी कच्ची कॉलोनियों की रजिस्ट्री होनी चाहिए। हालांकि यह साफ है कि अगर कालोनियां पंजीकृत हो गईं तो उनको कोई यह नहीं कहेगा कि उन्होंने प्रयास नहीं किया था। राज्य सरकार भी पूरे प्रयास में है कि पूरा श्रेय कहीं भाजपा अकेले ना ले ले। अब देखना यही है की अनधिकृत कॉलोनियों में रहने वाले लोगों के ऊपर अस्थाई छत कब होगी।

satyamraiw|6304@gmail.com

सत्ता पाने की होड़

आजादी के कुछ वर्षों बाद ही अवसरवादी राजनीति ने अपना क्रूर पंजा फैलाना शुरू कर दिया था। इसके लिए किसी दल विशेष को जिम्मेदार ठहराना ठीक नहीं। आज के इस राजनीतिक वातावरण में कोई दल पूरी तरह से बेदाग नहीं है। सत्ता पाने की होड़ लगी है। इसी का नतीजा अभी महाराष्ट्र की राजनीति में भी देखने को मिला। पार्टियों के प्रयास से ही इस तरह की राजनीति से मुक्ति मिल सकती है।